ब्रह्मचर्य के साधन

भोजन

[नवम भाग]

भूमिका

"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्"

धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह पुरुषार्थचतुष्टय मानव जीवन का उद्देश्य है। इस पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि का मूलकारण आरोग्य है। शरीर यदि स्वस्थ नहीं है, रोगी है, तो पुरुषार्थचतुष्टय की तो क्या बात, शौच स्नानादि नित्य कर्मों का अनुष्ठान भी भलीभांति नहीं किया जाता। रोगी स्वयं दूसरों पर भार होता है, वह किसी की क्या सेवा या उपकार कर सकता है तथा क्या धर्म कमा सकता है। इसलिए शरीर की स्वस्थता को पुरुषार्थचतुष्टय की सिद्धि के लिए हमारे शास्त्रकारों ने सर्वप्रथम और मुख्य स्थान दिया है।

जीवन का चरम लक्ष्य, अन्तिम ध्येय मोक्षप्राप्ति ही है और उसकी प्राप्ति आत्मा इस शरीररूपी रथ पर सवार होकर करता है। यदि शरीररूपी रथ स्वस्थ और दृढ़ नहीं है तो मार्ग में ही जीर्ण शीर्ण हो जायेगा तथा आत्मा अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकेगा। आवागमन के चक्र से न छूटकर दुःखसागर में गोता खायेगा। अतः आवश्यक है कि हमारा शरीररूपी रथ, जीवन यात्रा का साधन, स्वस्थ दृढ़ और सुगठित हो।

"आहारवैषम्यादस्वास्थ्यम्" (सु० सू० अ० ४६)

भोजन की विषमता से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। शरीर को

स्वस्थ और नीरोग रखने के लिए भोजन का सर्वप्रथम स्थान है, क्योंकि यह पांचभौतिक शरीर भोजन के द्वारा ही हृष्ट-पुष्ट और दृढ़ाङ्ग होता है। शरीर का उपचय अपचय=वृद्धि और ह्रास भोजन पर ही निर्भर है। यदि शरीर को यथासमय उचित भोजन मिलता रहता है तो शरीर भी हृष्ट-पुष्ट और सुडौल बन जाता है अन्यथा स्वास्थ्य गिर जाता है।

भोजन जैसे आवश्यक और महत्त्वपूर्ण विषय की उपेक्षा करना अपने जीवन की उपेक्षा करना है, भोजन के विषय में अज्ञान रखना मानो अपने जीवन को अन्धेरे में रखना है। हमारे पूर्वज ऋषि महर्षियों ने इस विषय पर गम्भीरता से विचार-विवेचन किया है। किस पदार्थ के क्या गुण हैं और वह भी किस अवस्था में लाभ-दायक अथवा हानिप्रद हैं देश, काल और प्रकृति भेद से हमारे शास्त्रकारों ने भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों की पूर्ण मीमांसा की है इसलिए जब हमारा देश शास्त्रविहित भोजन करता था तब संसार में सभी दृष्टियों से शिरोमणि था। किन्तु दुःख है कि आज हम शास्त्रों को भूल गये, इसलिए अनेक कुरीतियां भोजन के विषय में प्रचलित हो गई हैं। मद्य, मांस लहसुन, प्याज आदि अभक्ष्य पदार्थों का भी निःसङ्कोच होकर सेवन किया जाता है।

इसका मुख्य कारण यह है कि हम भोजन के मूल उद्देश्य को ही भूल गये, हमारा भोजन जीवन के लिए नहीं अपितु जीवन ही भोजन के लिए बन गया है। भोजन के परखने की कसौटी केवल जिह्वा ही रह गई है और यह पिशाचिनी इतनी लोलुप हो गई है कि इसने सर्वनाश ही कर डाला।

भोजन बिगड़ने और असंयमित होने से ब्रह्मचर्य पालन और संयमित जीवन का अभाव होता जा रहा है। विषयवासना, शृंगार और व्यभिचार की भट्टी इतनी प्रचड होकर धधक रही है कि इस

ऋषियों की पवित्र भूमि भारत को ही नहीं, अपितु समस्त विश्व को ही भस्मसात् कर देना चाहती है।

ऐसे विकट काल में यह छोटासा किन्तु सारगर्भित पुस्तक "भोजन" कुछ भी पथ-प्रदर्शन कर सका तो हमारा परिश्रम सफल है देश का भविष्य उज्ज्वल है।

इस में भोजन सम्बन्धी अनेक भ्रान्तधारणाओं और प्रथाओं का खण्डन किया गया है। बहुतसी ऐसी बातें भी पाठक महानुभावों को मिलेंगी जो सर्वथा नवीन प्रतीत होती हैं, उन पर गम्भीरता से विचार करने से तत्त्वज्ञान होगा। हमने इसे यथाशक्ति उपयोगी और सुन्दर बनाने का यत्न किया है, हम अपने कार्य में कहां तक सफल हुए हैं यह तो पाठक महानुभाव ही बता सकेंगे।

ओ३मानन्द सरस्वती
गुरुकुल झज्जर

संवत २०३४ वि०
सन् १९७७ ई०

हमारा भोजन

प्रत्येक मनुष्य स्वस्थ रहना चाहता है, रोगी रहना किसी को नहीं भाता। स्वास्थ्य और भोजन का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। विचारशील मनुष्य तथा जातियां इसके महत्त्व को भलीभांति समझते हैं। हमारे प्राचीन पुरुष भोजन के महत्त्व से भलीभांति परिचित थे, अतः वे इस विषय में बड़े सावधान रहते थे। आज हम उनकी सन्तान भोजन के विषय में किञ्चिन्मात्र भी ध्यान नहीं रखते।

दैनिक आहार का हमारे स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य, मन, बुद्धि और आत्मा पर क्या प्रभाव पड़ता है यह तो हम कभी विचारने का कष्ट भी नहीं करते। शुद्धाहार से ही मनुष्य का सब कुछ बनता तथा मिथ्याहार से सर्वनाश हो जाता है। इस पर हमारे प्राचीन ऋषि महर्षियों ने गम्भीरता से विचार ही नहीं अपितु पूर्ण रूप से अनुभव किया था। इसी कारण उन्होंने अपनी खोज के आधार पर शुद्धाहार की बड़ी प्रशंसा की है। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है-

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥

आहार के शुद्ध होने से अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि आदि की शुद्धि होती है, बुद्धि के शुद्ध होने पर स्मृति दृढ़ वा स्थिर हो जाती है, स्मृति के दृढ़ होने पर सब (हृदय की) गांठे खुल जाती हैं अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन ढीले हो जाते हैं। अविद्या-अन्धकार मिटकर मनुष्य सब दासता की शृंखलाओं से छुटकारा पाता है और परम पद मोक्ष की ओर पग बढ़ाता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि शुद्धाहार से मनुष्य के लोक और परलोक दोनों बनते हैं। अतः योगिराज श्रीकृष्ण जी ने इसी भाव को गीता में निम्नलिखित प्रकार से प्रगट किया है—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ (६-१७)

यथायोग्य आहार-विहार करनेवाले, यथोचित कर्म करनेवाले, उचित मात्रा में निद्रा और जागरण करनेवाले का यह योग दुःखनाशक होता है अर्थात् युक्त आहार-विहार आदि के सेवन से मनुष्य के सब दुःख दूर हो जाते हैं।

भोजन की आवश्यकता सभी प्राणियों को है, कीट पतङ्ग से लेकर सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य तक इसी भोजन के लिए व्याकुल दिखाई देते हैं। इस युग के मनुष्य की सम्पूर्ण शक्ति इसी भोजन जुटाने में लगी हुई है। प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक "हाय भोजन हाय भोजन" करता हुआ दौड़ करता है। यही नहीं, आज मानव का जीवन मरण भी भोजन के लिये ही है। किन्तु हम भोजन क्यों करते हैं। इसका उचित उत्तर सहस्रों में से कोई विचारशील व्यक्ति ही दे सकता है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में इसका उत्तर इस प्रकार दिया है—

आहारः प्रीणनः सद्योबलकृद्देहधारणः ।
स्मृत्यायुःशक्तिवर्णौजःसत्त्वशोभाविवर्धनः ॥ (भाव० ४-१)

भोजन से तत्काल ही शरीर का पोषण और धारण होता है, बल की वृद्धि होती है तथा स्मरणशक्ति, आयु, सामर्थ्य, शरीर का वर्ण, कान्ति, उत्साह, धैर्य और शोभा बढ़ती है। इससे सिद्ध हुआ कि—

"आहार हमारा जीवन है"।

क्योंकि भोजन से मनुष्य क्या सभी प्राणियों के जीवन की रक्षा होती है अतः भोजन की आवश्यकता सभी प्राणधारियों को है अथवा यों कहिये कि प्राणिमात्र के जीवन का आधार खान पान है यदि हमें भोजन न मिले तो हमारा जीवित रहना असम्भव है।

अतः जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त प्रत्येक प्राणी जीवनधारणार्थ भोजन ग्रहण करता रहता है और इसी से जीवित रहता है। अतः सर्वप्रथम तथा सर्वोत्तम भोजन का महत्त्व हमारे जीवन में यही है, जिसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय से हमारा अन्धेरे में रहना कितनी आश्चर्य तथा मूर्खता की बात है। अपठित जिन्हें जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं, ऐसे लोग इस विषय में न जानते हों तो कोई बड़ी बात नहीं, किन्तु आज का शिक्षित समुदाय इस विषय में कोरा है यह बड़े दुःख की बात है। अशिक्षित भाई तो कुछ प्राचीन परम्परा से इस विषय में थोड़ा बहुत ज्ञान रखते भी हैं किन्तु बड़ी-बड़ी बी० ए०, एम० ए०, प्रभाकर और शास्त्री आदि डीग्रीधारी शिक्षितों में जीवन के आधार आहार जैसे महत्त्वपूर्ण विषय के ज्ञान का अभाव हो तो ऐसी दयनीय अवस्था को देख अत्यन्त दुःख होता है और देश का निकट भविष्य उज्ज्वल दिखाई नहीं देता।

वैसे इतना ज्ञान तो प्रत्येक प्राणी को है कि भोजन करने के पश्चात् बल उत्साह प्रतीत होता है, भूखे प्राणी में इसका अभाव देखने में आता है। यदि भोजन सर्वथा न किया जाये तो मृत्यु निश्चित रूप से दर्शन देती है, टाले नहीं टलती। यह शरीर के रचयिता अथवा प्रकृति का अटल नियम है। उचित एवं आवश्यक भोजन की प्राप्ति के बिना स्वास्थ्यरक्षा अथवा यों कहिये जीवनरक्षा नहीं हो सकती। इसीलिए स्वास्थ्यप्राप्ति तथा जीवनरक्षा के लिए भोजन का भी एक विशेष स्थान है। चरक शास्त्र में इसी विषय में कहा है—

बलमारोग्यमायुश्च प्राणाश्चाग्नौ प्रतिष्ठिताः।
अन्नपानेन्धनैश्चाग्निर्दीप्यते शाम्यतेऽन्यथा।

शरीर के अन्दर जो अग्नि है उसी के आश्रय से देह में प्राण

[illegible]

स्थिर रहते हैं। यह अग्नि बल, आरोग्य और आयु को प्रतिष्ठित करनेवाली है अथवा यह कह सकते हैं कि अन्तरग्नि पर देह की स्थिति है। अन्न-पान रूपी ईन्धन से ही अन्तरग्नि स्थिर रहती है; इस अग्नि का दीपन और शमन भोजन से ही होता है। यह हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि अन्न-पान के सेवन से आयुपर्यन्त प्राण रहते हैं। इसी विषय में चरक शास्त्र में लिखा है—

इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शविधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणि-संज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः, प्रत्यक्षफलदर्शनात्, तदिन्धना ह्यन्तराग्नेः स्थितिः, तत्सत्त्वमूर्जयति, तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रिय-प्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं विपरीतमहिताय सम्पद्यते।

कुशल विचारशील पुरुष जो अन्न-पान (भोजन) विधिपूर्वक बनाया गया है, जो अच्छे वर्ण (रङ्ग) गन्ध रस तथा स्पर्शसंयुक्त है उसे प्राणियों अर्थात् मनुष्यादि देहधारियों के लिए प्राणतुल्य मानते हैं। क्योंकि यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि अन्न-पान से प्राणी के प्राण कार्य करते हैं। भोजन न करने से आयु क्षीण होकर मृत्यु हो जाती है। अन्न-पान से ही अन्तरग्नि स्थिर रहती है, अन्न और प्राणों को ही नहीं मन को बल मिलता है। जब भोजन यथोचित विधि से किया जाता है तो यह शरीर के वातादि (दोषों) का रस रक्त वीर्यादि धातुओं के व्यूह (संघात) को बनाने वाला है। जहां जिस धातु की न्यूनता होती है वहां उसकी भोजन पूर्ति करता है। बल देनेवाला, वर्ण (रंग) को निखरानेवाला, कान्तिदायक और इन्द्रियों को प्रसन्न तथा तृप्त करनेवाला है। विधि से विपरीत सेवन करने से हानिकारक सिद्ध होता है।

आहार से शरीर का विकास और वृद्धि

सभी प्राणी जिस समय जन्म लेते हैं, तत्काल इन्हें क्षुधा सताने लगती है। माता के गर्भ से बाहर आते ही मानव-शिशु

तुरन्त ही रोने और बिलबिलाने लगता है और माता का स्तन जहां उसके मुख में आया तथा उसने दुग्धामृत का पान किया, वह तत्काल ही शान्तचित्त हो खेलने लगा वा सो जाता है। क्षुधा की निवृत्ति के साथ ही उसकी व्याकुलता भी भाग जाती है। सभी प्राणियों की ऐसी समानावस्था है।

इस दुग्धपान तथा भोजन के सेवन से सभी प्राणी क्षुधा के शान्त होते ही जहां शान्त हो जाते हैं, वहां इनके शरीर में कुछ ही दिनों में वृद्धि-विकास स्पष्टतया दिखाई देने लगता है। इससे सिद्ध होता है कि जन्म के समय से लेकर युवावस्था तक मनुष्य ही नहीं प्रत्येक प्राणी के शरीर की वृद्धि तथा विकास प्रतिदिन के किए हुए भोजन से होता रहता है अतः हमारे शरीर की सम्यक्तया वृद्धि वा सम्पूर्ण विकास हमारे भोजन पर निर्भर है यदि हमें भोजन यथोचित रूप में न मिले तो शरीर का विकास भी रुक जायेगा। यदि भोजन सर्वथा न मिले तो विकास के स्थान में ह्रास तथा अन्त में शरीर का नाश ही हो जायेगा। इससे यह सिद्ध होता है कि आहार जहां जीवन का आधार है वहाँ विकास वा वृद्धि का भी मुख्य कारण है किन्तु वह भोजन हितकर होना चाहिए। हितकर भोजन के विना वृद्धि असम्भव है। चरक शास्त्र में लिखा भी है—

"हिताहारोपयोग एव पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवति"

अर्थात् एक हितकर आहार का उपयोग ही पुरुष के शरीर की वृद्धि करता है। वैसे तो जो कुछ खाया जाता है वह आहार (भोजन) कहलाता। चरकशास्त्र में लिखा है "आहारत्वमाहारस्यैकविधमर्थाभेदात्।" निगरण अर्थात् निगलने की क्रिया सभी आहारों में एक समान है। भिन्न-भिन्न भोजन की वस्तुओं व निगरण के समान होने से सबको आहार कहते हैं। "आहार्यते गलादधो नीयते इत्याहारः" गले से नीचे जो ले जाया जाता है उसे

आहार कहते हैं। सभी आहार के द्रव्यों में आवश्यकता होती है, किन्तु हमारे लिए हितकर आहार कौन से हैं यह जानने की वस्तु है। जो आहार शरीर की तृप्ति करे वह हितकर है, यह एक लक्षण तो कर दिया। आगे इसी विषय में लिखा है—

समांश्चैव शरीरधातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमांश्च समीकरोतीत्येतद्धितं विद्धि, विपरीतमहितमिति, एतद् हिताहितलक्षणमनपवादं भवति।

(चरक सूत्र० अ० २५)

अग्निवेश के पूछने पर भगवान् आत्रेय ने उत्तर दिया—जो आहार समावस्था में स्थित शरीर की वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, वीर्यादि धातुओं को प्रकृति अर्थात् साम्यावस्था में ही रखता है, दूषित नहीं होने देता और सुरक्षित रखता है। विषम (बिगड़े हुए) धातुओं को समावस्था में ले आता है अर्थात् सुधार देता है उस भोजन को हितकर कहते हैं। इससे विपरीत जो सम धातुओं को विषम कर (बिगाड़) दे, और विषम अवस्था में रखे अर्थात् बिगड़ी को बिगड़ी ही रहने दे उसको अहितकर समझना चाहिये। इस विषय में खोलकर आगे लिखेंगे। विषम और अहितकर भोजन करने से अरुचि, शारीरिक दुर्बलता, कण्डू, पामा, कुष्ठ आदि रोगों की उत्पत्ति होती है। अङ्गावसाद तथा दोषों के प्रकुपित होने से उस उस देश के अनुसार ग्रहणी अर्श आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

अधिक भोजन

यह प्रत्येक मनुष्य का प्रतिदिन का अनुभव तथा डाक्टरों का अधिकांश में यही मत है कि ९९ प्रतिशत मनुष्य आवश्यकता से अधिक आहार ग्रहण करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि हम सब जिह्वा के दास हैं। हमारी रसना (जिह्वा सदैव स्वादिष्ट भोजन के लिए लपलपाती रहती है। हम स्वाद के चक्कर में आकर

ही अधिक खा लेते हैं। पूज्य महात्मा गांधी जी इस विषय में लिखते हैं :—"हम लोग इतने पेटू होगये हैं कि हमारी जिह्वा सदा स्वादिष्ठ भोजन चाहती है। इसलिये हम लोग अपने मेहमानों को स्वादिष्ठ भोजन कराते हैं कि जब हम भी उनके यहां जावेंगे तो वे भी हमें वैसा ही भोजन करायेंगे। यदि हम अधिक खाने के पाप से बचना चाहते हैं तो हमें प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम किसी भी दावत (विशेष भोजन) में भाग न लें। हमारे यहां जब कोई मेहमान (अतिथि) आजाये तो उन्हें स्वास्थ्य के नियमों का ध्यान रखते हुए खिलाना चाहिए।" किन्तु स्वभाव से यह स्वादुप्रिय मनुष्य स्वादिष्ठ भोजनों में जो क्षणिक सुख अनुभव करता है इसी सुख को अपने जीवन का लक्ष्य बना लेता है और अपना सारा बहुमूल्य जीवन इस सुख की इच्छापूर्ति में गंवा देता है और यह सब भूल जाता है कि हमारा हित और कल्याण इन स्वादिष्ठ भोजनों से होनेवाला नहीं है। इसलिये मनुष्य पेटू बन जाता है। स्वास्थ्य, बल वीर्य, शक्ति, ब्रह्मचर्य, भाड़ में जायें किन्तु इस चटोरे पेटू मनुष्य को चटपटे और मीठे स्वादिष्ठ भोजन चाहियें। जिह्वा का संयम करनेवाले बहुत थोड़े व्यक्ति देखने में आते हैं। स्वादिष्ठ भोजन करना कोई पाप नहीं किन्तु स्वाद के कारण अधिक खाना तथा भोजन को स्वादिष्ठ बनाने के लिये नमक, मिर्च, मसाले, खटाई आदि हानिकारक पदार्थ डालकर भोजन को बिगाड़कर खाना तो महामूर्खता है। कविराज हरनामदास जी इस विषय में लिखते हैं "चूर्णों और चटपटी चीजों का चलन बढ़ गया है। बाबू लोग गोल गप्पे, इमली की चाट, भल्ले पकोड़ियां एक जगह बैठकर खा जाते हैं। लोगो ! होश करो क्यों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारते हो, ऐसी चीजें हाजमे को बिगाड़ती हैं और जीवन के सार (वीर्य) को दुर्बल करती हैं और सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं रहने

देतीं। छोटे लड़के जो खटाई खाते हैं उन्हें युवावस्था से पहिले ही कामवासना की उमंग आने लगती हैं जिनकी आंखें खुली हैं वे ये सब बातें स्पष्ट रीति से देख रहे हैं अधिक क्या लिखूं। ऐसे दृश्यों को देखते हुये मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि हमारी निर्बलता हमारे रोग, हमारा बुढापा, एक सीमा तक खाने-पीने की गरीबी के कारण है। अतः भोजन में बड़ी सावधानता और संयम की आवश्यकता है।

——:०:——

भोजन में संयम

स्वास्थ्यप्रिय व्यक्ति वा ब्रह्मचारी न अधिक खाता है न न्यून; किन्तु शरीर के लिये जितना आवश्यक है ठीक उतनी ही मात्रा में खाता है। अधिक खाना सरल और सर्वथा उपवास करना भी सहज है किन्तु यथोचित (न न्यून न अधिक) खाना अधिक कठिन है। भोजन समतोलता रखना ही तो ब्रह्मचारी की सच्ची तपस्या है। यही भोजन का संयम है। 'मितभोजन स्वास्थ्यम्' यह सूत्र आया है अर्थात् मितभोजन अल्पाहार स्वास्थ्य के लिये हितकर है। अतिभोजन तो सभी ने वर्जित किया है किन्तु मिताहार की प्रशंसा प्रायः सभी लेखक और व्याख्याता करते हैं। किन्तु मनुष्य की विशेषता तो तब है जब वह शरीर को जितने भोजन की आवश्यकता है उतना ग्रहण करे, न अधिक न न्यून। यथोचित भोजन करना बहुत बड़ा संयम है और यह भोजन का संयम ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य आदि सभी शुभ कर्मों की आधारशिला है। भोजन में संयम करनेवाला मनुष्य कोई सहस्रों में एक दो होता है। और ऐसा ही संयमी पुरुष श्रेष्ठ सच्चे स्वास्थ्य का स्वाद लूटता है और ब्रह्मचर्य पालन में सफलता ऐसे ही सौभाग्यशाली व्यक्ति को प्राप्त होती है। ७५ प्रतिशत स्वप्नदोष के रोगी भोजन में संयम न होने के

कारण ही होते हैं। जहां भोजन कुछ अधिक स्वाद लगा संयम न होने के कारण पेट को ठोककर भर लिया। रात्री में पेट के भारी होने से स्वप्नदोष हो जाता है। फिर सारा स्वाद निकल जाता है रोता और पछताता है। कितने ही व्यक्ति अपनी इस भूल को समझते हैं किन्तु संयम न होने के कारण इसी प्रकार हानि उठाते रहते हैं। कुछ रोगी अज्ञानवश भी भोजन में अधिक खाने की भूल करते हैं। जब उन्हें पता चलता है तो अधिक भोजन करना छोड़ देते हैं और आहार-व्यवहार के संयम को धारण कर लेते हैं। नित्य युक्त आहार-विहार के बिना कल्याण सम्भव नहीं। अतः सभी तथा विद्यार्थियों के लिये युक्ताहारविहार का आदेश वा उपदेश ऋषियों ने किया है—"नित्यं युक्ताहारविहारवान् विद्योपार्जने च यत्नवान् भव" विद्यार्थी अर्थात् ब्रह्मचारी को नित्य युक्ति से आहार-विहार करते हुए विद्याग्रहण में यत्नशील होना चाहिये। मात्रा से न्यून आहार करने से बल, वर्ण, कान्ति, शक्ति, पुष्टि का नाश वा क्षीणता होती है, तृप्ति नहीं होती। उदावर्त आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं, मनुष्य अतृप्त और अशान्त रहता है, वीर्य आदि धातुओं की वृद्धि नहीं होती, आयु घट जाती है। शरीर की आवश्यकतानुसार भोजन न करने से शरीर का सारभाग वीर्य, बल, ओज नष्ट हो जाता है। मन बुद्धि और इन्द्रियों की शक्ति का ह्रास और नाश हो जाता है और ८० प्रकार के वातरोगों की उत्पत्ति होती है। अतः न्यून भोजन करना, स्वस्थ होते हुये उपवास करना आदि स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं किन्तु यह स्मरण रखने की बात है कि जहां आवश्यकता से न्यून भोजन शरीर को रोगी तथा क्षीण बनाता है वहां आवश्यकता से अधिक भोजन बल, वीर्य, ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य के लिये और भी अधिक घातक है। न्यून भोजन करना इतना अपराध नहीं जितना बड़ा घोर अपराध अधिक

भोजन करना है। कम भोजन करने से शरीर की क्षति कुछ अधिक
बातों में होती है किन्तु अधिक भोजन करनेवाले को अपने अपराध
का शीघ्र ही दण्ड मिलता है। अतः यहाँ संक्षेप से अधिक भोजन
करने की हानियाँ लिखी जाती हैं।

——:o:——

अधिक भोजन से हानियाँ

मात्रा से अधिक खाने से आलस्य, भारीपन, पेट फूलना, पेट में गुड़गुड़ाहट आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं। महात्मा गाँधी जी लिखते हैं कि "अधिक खाने से बहुतों के पेट में वायुविकार पैदा हो जाता है, खट्टी डकार आती हैं, यह भोजन न पचने की पहिचान है। डाक्टर और वैद्य सभी का यह मत है"। पेट को ठूंस ठूंस कर भरने से विशूचिका रोग (हैजा) बहुत ही शीघ्र होता है और इन्फ्लुएञ्जा के होने की भी आशंका रहती है। अपचन, अजीर्ण, मलबन्ध, आनाह, संग्रहणी, बवासीर तथा स्वप्नदोष प्रमेहादि धातु सम्बन्धी रोग अधिक खाने वाले पेटू लोगों को ही होते हैं। मनुष्य प्रायः जितना खाते हैं उसका तीसरा भाग भी नहीं पचा सकते, जो भोजन नहीं पचता वह पेट में पड़ा रहकर रक्त को विषैला और दूषित बनाता और स्वप्नदोष अर्शादि असंख्य विकारों का जन्म देता है। प्राणशक्ति को द्विगुण कार्य करना पड़ता है, एक तो अधिक भोजन के पचाने में, दूसरा मल को बाहर निकालने में। अधिक खाने से राष्ट्र के अन्न और धन दोनों का अपव्यय होता है तथा रोग (दण्डरूप) भी प्रकृति देवी प्रदान करती है। धनी लोग इस दोष के अधिक दोषी हैं, वे कई निर्धन मनुष्यों का पालन जिससे हो जाये इतना अधिक अन्न प्रतिदिन बिगाड़ देते हैं। यह घोर अपराध है। अतः मात्रा से अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। इस विषय में मनु जी महाराज लिखते हैं—

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ (मनु० अ० २-५७)

अति भोजन करने से स्वास्थ्यहानि तथा रोगों की वृद्धि होती है, आयु घटती है, व्याधि आदि के कारण अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं, पुण्य का नाश और पाप की वृद्धि होती है, और अधिक खानेवाले की जनता में निन्दा भी होती है। ब्रह्मचारी को तो भूलकर भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिये। पेट ठोक ठोक कर अधिक भोजन करनेवाला सात जन्म भी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता। ब्रह्मचारी का सायंकाल का भोजन मध्याह्न से आधा होना चाहिये तथा सोने से दो या तीन घण्टे पूर्व ही भोजन करना चाहिए। दुग्ध तथा जलपान भी सोने से दो वा तीन घण्टे पूर्व ही कर लेना चाहिए। अतः अधिक भोजन नहीं करना चाहिये।

कवि भगवान्दास वामन जी इस विषय में लिखते हैं—

अधिक वायु के भरने से फुटवाल फटि जाय।
बड़ी कृपा भगवान् की पेट नहीं फटि जाय ॥१॥
यद्यपि न दीखत पेट फटा, फटत मनुज की देह।
रोग भयंकर होत है बने नरक को गेह ॥२॥

इसी विषय में "ब्रह्मचर्य ही जीवन है" पुस्तक के प्रसिद्ध लेखक स्वामी शिवानन्द जी लिखते हैं—

"अधिक भोजन करनेवाला सात जन्म भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता क्योंकि जोर की आंधी जैसे पेड़ों को उखाड़ डालती है, वैसे कामदेव पेटू मनुष्य को पटक पटक कर मार डालता है। अधिक भोजन करने वाला पुरुष किसी हालत में वीर्य नहीं रोक सकता, उसका चित्त सदा विषय की ओर लगा रहता है। मन और तन दोनों रोगी बन जाते हैं, आयु घट जाती है और स्वार्थ व परमार्थ दोनों मटियामेट हो जाते हैं। यदि आपको वीर्यनाश का

आरोग्यवान् बनना हो, स्वप्नदोष से और अकाल मृत्यु से बचना हो तो आपको अवश्य ही सादा मिताहारी बनना होगा।"

—:०:—

उत्तम भोजन से उत्तम सन्तान

इस विषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज अपने ग्रन्थ संस्कार विधि में गर्भाधान संस्कार विषय पर लिखते हैं—

"उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है। इसलिए पति-पत्नी अपने शरीर आत्मा की पुष्टि के लिए बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वोषधि का सेवन करें। वे पुष्टिकारक सर्वोषधि ये हैं। दो खण्ड आम्बाहल्दी, दूसरी खाने की हल्दी, चन्दन, मुरा, कुष्ठ, जटामासी, मोरवेल, शिलाजीत, कपूर मुस्ता, भद्रमोथ, इन सब औषधियों का चूर्ण करके समभाग लेके उदुम्बर के काष्ठपात्र में गाय के दूध के साथ उनकी दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़ी की मन्थनी ले मन्थन करके उसमें से मक्खन निकाल उसको ताय घृत करके उसमें सुगन्धितद्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिला के अर्थात् सेर भर दूध में छटाँक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्ध कर घी हुये पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केशर और एक-एक माशा जायफल आदि मिला के नित्य प्रातःकाल उस घी में २२, २३ पृष्ठ संस्कारविधि में लिखे प्रमाणे आघारावाज्याभागाहुति ४ (चार) और पृष्ठ २४ में लिखे हुए (विष्णुर्योनिः) इत्यादि सात मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भ स्थापन क्रिया करनी हो उसके दिन में होम करके उसी घी को दोनों जने खीर या भात के साथ मिला के यथारुचि भोजन करें। इस प्रकार पुष्टिकारक भोजन करके गर्भ स्थापन करें तो

सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे। यदि कन्या की इच्छा हो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के एक पात्र में जमाये हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे क्योंकि 'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः' यह छान्दोग्य का वचन है अर्थात् आहार जो मद्य मांसादिरहित घृत दुग्धादि चावल गेहूं आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि बल, पुरुषार्थ, आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है। जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यह विद्या है। इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें, क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है।"

गर्भाधान के समय स्त्री को सावधान रहने के लिए लिखते हैं—

"पुनः स्त्री के भोजन छादन का सुनियम करे, कोई मादक मद्यादि, रेचक हरीतकी (हरड़) आदि क्षार अतिलवण आदि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लाल मिर्ची आदि स्त्री न खावे किन्तु घृत, दूध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि औषधि चावल, मिष्ट, दधि, गेहूं, उर्द, मूङ्ग, तूअर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक खावे। युक्त आहार विहार सदा करे। दधि में शुंठी और ब्राह्मी औषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे जिससे सन्तान अति बुद्धिमान् रोगरहित शुभ गुण कर्म स्वभाव वाली होवें।"

उत्तम सन्तान निर्माणार्थ पुंसवन संस्कार में महर्षि लिखते हैं—

"स्त्री सुनियम युक्ताहार विहार करे, विशेषकर गिलय ब्राह्मी औषधि और शुण्ठी को दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी खाया करे, और शयन और अधिक भाषण, अधिक खारा, खट्टा, तीखा, कड़वा, रेचक हरड़ें आदि न खावे, सूक्ष्म आहार करे, क्रोध, द्वेष

लोभादि दोषों में न फंसे, चित्त को सदा प्रसन्न रखे, इत्यादि शुभाचरण करे।"

भोजन का स्थान

भोजनालय- जिस स्थान पर बैठकर मनुष्य भोजन करे वह इतना शुद्ध, लीपा-पोता, धुला-धुलाया, हवादार और खुला होना चाहिये, जिससे आहार ग्रहण करते समय मन में कोई विकार न आये। उस समय भोजन करने वाले व्यक्ति का चित्त भोजनालय की स्वच्छता आदि से प्रभावित होकर सर्वथा शान्त और प्रसन्न रहना चाहिये। आहार-ग्रहण करते समय यदि चित्त में किसी प्रकार की गड़बड़ी वा अशान्ति हुई तो भोजन का पाचन कार्य भलीभांति न हो सकेगा। भोजन करते समय मानसिक विचारों का शरीरयन्त्र पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

जो लोग शुद्धि नहीं करते उनके भोजनालय में कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं झूठी रकेबी तथा मांस खाने वालों के स्थान पर हाड़गोड़ आदि पड़े रहते हैं और मक्खियों का तो क्या कहना। वह स्थान ऐसा बुरा प्रतीत होता है कि यदि कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वांत (वमन) होने की भी सम्भावना है। ऐसे दुर्गन्धयुक्त स्थान पर भोजन करने से शरीर और मन पर अच्छा प्रभाव कैसे पड़ सकता है? पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति के लिये महर्षि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं—

"जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिए।" और कच्चे मकान में गाय के गोबर से चौका लगाने का महत्त्व यह लिखते हैं—

"गोमय (गाय का गोबर) चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता, न कपड़ा बिगड़ता और न मलिन होता है। जैसे मिट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मिट्टी और गोबर से जिस

स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अति सुन्दर होता है और जहाँ रसोई बनती है वहाँ भोजन करने से घी मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है उससे मक्खी कीड़ी और बहुत से जीव मलिन स्थान के रहने से आते हैं। यदि उस में झाड़ू लगवाने से शुद्धि न की जावे तो जानो पखानों के समान वह स्थान हो जाता है। इसलिए प्रति-दिन गोबर मिट्टी झाड़ से सर्वथा शुद्ध रखना चाहिये।" इसी विषय में प्रश्न है "चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा है या बाहर बैठकर ?" उत्तर देते हैं "जहाँ पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान देखें वहाँ भोजन करना चाहिये।" इसी विषय में महर्षि धन्वन्तरि जी महाराज सुश्रुत में लिखते हैं—

भोक्तारं विजने रम्ये निःसंयाते शुभे शुचौ।
सुगन्धपुष्परचिते समे देशे च भोजयेत् ।४५८।।

(सूत्र स्थान अ० ४६)

एकान्त स्थान में, जहां पर लोगों का यातायात=आना जाना न हो, रमणीय, शुद्ध पवित्र तथा पुष्पादि से सुगन्धित, सम (जो उंचा-नीचा न हो, स्थान में बैठकर भोजन करना चाहिये। हमारे शास्त्रकारों ने भोजन, भोजन का स्थान और भोज्यपदार्थों की शुद्धता तथा पवित्रता पर अधिक बल दिया है, अतः भोजन के स्थानादि को धो-लीपकर सर्वथा शुद्ध रखना चाहिए। इसी में उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य निहित है।

भोजन से पूर्व तथा पश्चात् करने योग्य क्रिया

भोजन से पूर्व स्नान करने का महत्त्व हमारे प्राचीन पुरुष विशेषतया मानते हैं। ग्रामीण लोगों पर इसकी अब तक छाप है। कितने ही भारतीय अशिक्षित ग्रामीण लोग बिना स्नान किये भोजन करना पाप समझते हैं। अतः मकर संक्रान्ति आदि पर्वों

तो न नहाने वाले लोग भी भोजन से पूर्व स्नान कर लेते हैं। यह प्रसिद्ध लोकोक्ति "सौ काम छोड़कर नहा" लोगों में कुछ व्यावहारिक रूप में प्रचलित है। संस्कृत के श्लोक का यह भाग—"शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्" भी यही सिद्ध करता है कि भोजन से पूर्व स्नान अवश्य ही कर लेना चाहिए।

महर्षि दयानन्द जी इस विषय में लिखते हैं—"प्रथम स्नान इसलिए है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं इससे स्नान भोजन से पूर्व अवश्य करना।" आजकल पढ़े लिखे लोग भोजन तो चार पांच बार तक दिन में कर लेते हैं किन्तु स्नान जैसे आवश्यक कृत्य को दिन में एक बार भी नहीं करते। कितने ही ऐसे बाबू लोग इस भारत भूमि पर मिल जायेंगे जो सारे शीतकाल (जाड़े) में एक बार भी स्नान नहीं करते और बिस्कुट आदि तो बिना शौच से निवृत्त हुए ही बिस्तर पर उठते ही मंगवा लेते हैं किन्तु ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्यप्रेमी व्यक्ति को प्रतिदिन सब ऋतुओं में बिना स्नान किये भोजन नहीं करना चाहिये। यदि स्नान प्रातः सायं दोनों समय किया जाये तो और भी अच्छा है।

यथार्थ में भोजन के अधिकारी तो वे ही लोग हैं जो प्रातः-काल ब्राह्ममुहूर्त में उठ शौच, स्नान, प्राणायाम ईश्वरोपासना, यज्ञ व्यायाम आदि नित्यप्रति प्रातःकाल ही कर लेते हैं और इसी प्रकार सायंकाल भी सब नित्यकर्म करते हैं, भोजन की वेला में हाथ, पाँव और मुख को भलीभांति शुद्ध जल से धोकर स्वच्छ कर लेना चाहिए शुद्ध वस्त्र धारण कर भोजनशाला में जाकर कुश आसन पर बैठें, यदि गृहस्थ हो तो बलिवैश्वदेवयज्ञ करे तथा अपने आश्रित कुत्ते आदि प्राणियों को भी भोजन दे।

हमारे शास्त्रों में अतिथिसत्कार का महत्व अत्यधिक पाया जाता है। अथर्ववेद में आया है—"श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत्

(गृहस्थ/मुनि) यति को अतिथि बनके घर आजावे तो प्रथम श्रीमान् सत्कार उसका सत्कार करना चाहिए और "अतिथिभ्यस्तेभ्योऽग्रे अश्नीयात्" (ऋ० ६-८-८) इस वेदाज्ञा के अनुसार गृहस्थ को अतिथि से पूर्व कभी भोजन न करना चाहिए। अतः अपने पूज्य-जनों साधु महात्मा अतिथियों को श्रेष्ठ भोजन से तृप्त कराने के उपरान्त स्वयं प्रसन्नचित्त हो भोजन ग्रहण करना चाहिए।

भोजन करते समय बोलना या कोलाहल करना हमारी सभ्यता के विरुद्ध है। "वाग्यतस्तु भुञ्जीत" के अनुसार मौन होकर शान्तिपूर्वक भोजन करना चाहिए। अपने भाग्य और परिश्रम से जो मिले उसी में सन्तुष्ट रहना चाहिये और अन्न की कभी निन्दा न करें।

भोजनोपरान्त तत्काल ही कठोर शारीरिक या मानसिक कोई भी कार्य करना या दौड़ना आदि हानिकारक है। शांतिपूर्वक शारीरिक या मानसिक साधारण कार्य किया जा सकता है। भोजन के पूर्व या पश्चात् कभी भी क्रोधादि के करने से भोजन विष बन जाता है। विलम्ब से पचता है अतः सावधान तथा शान्त रहना चाहिए।

भोजन करते समय सर्वप्रकार की चिन्ता शोक ईर्ष्यादि का परित्याग कर सर्वथा प्रसन्नचित्त रहने से भोजन भलीभांति पचता तथा शुद्ध रक्तादि धातुओं का निर्माण करता है और शरीर का बल बढ़ाकर शरीर को हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ और बलिष्ठ बनाता है। इसके साथ भक्ष्याभक्ष्य का विचार अवश्य रखना चाहिए।

भक्ष्याभक्ष्य मीमांसा

प्राचीन काल में राजा अश्वपति की प्रतिज्ञा (न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः) कि "मेरे राज्य में कोई शराब पीने

वाला व्यक्ति नहीं है" के अनुसार कोई भी भांग मदिरा आदि बुद्धिनाशक द्रव्यों का सेवन करने वाला नहीं था। सभी लोग अभक्ष्य को त्याग बल-बुद्धि वीर्य वर्द्धक, भक्ष्य पदार्थों का सेवन करते थे। किन्तु आज लोग अभक्ष्य पदार्थों को अपनाकर निज बल बुद्धि को खो बैठे। यहां तक कि निरामिषभोजी हरयाणा प्रान्त में भी आजकल मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। अभक्ष्य और भक्ष्य पदार्थों के हानि लाभों को विचार कर अभक्ष्य पदार्थों का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए।

भक्ष्य और अभक्ष्य पदार्थों की परिभाषा ऋषि दयानन्द जी के शब्दों में निम्न प्रकार है:—

"जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजन आदि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि, बल, पराक्रमवृद्धि होवे और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि (चावलादि), गोधूम (गेहूं), फल, मूल, दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाकमेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करनेवाले हैं उन उन का सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिए विहित हैं उन उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।"

(सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास)

इस परिभाषा को ध्यान में रखते हुए अपने भोजन में सुधार कर आहार-विहार करना चाहिए।

उच्छिष्ट भोजन अभक्ष्य

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत्॥

किसी को अपना उच्छिष्ट-झूठा भोजन न दे और न किसी के भोजन के बीच स्वयं खावे अर्थात् एक थाली में एक से अधिक नर-नारियों को भोजन नहीं करना चाहिए। अधिक भोजन भी अभक्ष्य है। और हाथ पैर धोये बिना कहीं इधर उधर न जावे। कुछ एक भाई सम्भव है यह प्रश्न करें कि 'गुरोरुच्छिष्टभोजनम्' इसका क्या अभिप्राय है? इसका अभिप्राय यह है कि गुरुजी के भोजन करने के पश्चात् जो भोजन पृथक् शुद्ध-पवित्र रखा हुआ है उस भोजन को शिष्य करे। और इससे दूसरी शिक्षा यह भी मिलती है कि गुरुजी के भोजन करने के पश्चात् ही शिष्य को भोजन करना चाहिए।

क्या शहद का भी उपयोग नहीं करना चाहिए वह भी तो मक्खियों का उच्छिष्ट है और क्या दूध भी नहीं पीना चाहिए वह भी बछड़े का झूठा है इसका उत्तर ऋषि दयानन्द जी महाराज के शब्दों में इस प्रकार है:—"शहद कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है, परन्तु वह बहुत सी औषधियों का सार ग्राह्य (ग्रहण करने योग्य है); बछड़ा अपनी मां के बाहर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता, इसलिए उच्छिष्ट परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उसकी मां के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दूध दोहना चाहिए।"

(सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास)

साथ और उच्छिष्ट खाने में यह एक भारी दोष है कि एक व्यक्ति के साथ दूसरे व्यक्ति की प्रकृति और स्वभाव नहीं मिलता। प्रकृति और स्वभाव भेद होने से एक दूसरे के रोग एक दूसरे को लग जाते हैं। जिस प्रकार से (कुष्ठी) कोढ़ी व्यक्ति के साथ भोजन करने से अच्छे मनुष्य का रक्त भी बिगड़ जाता है। इसलिये उच्छिष्ट भोजन अभक्ष्य है।

अभक्ष्य पदार्थ

वर्जयेन्मधु मांसञ्च (मनु० २।७७)

मधु और मांस का सेवन करना वर्जित है। संस्कृत साहित्य में मधु शब्द प्रायः दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। प्रथम शहद, द्वितीय शराब। यहां मधु शब्द से शराब अर्थ करना चाहिए, शहद नहीं। मधु और मांस का निषेध मनु महाराज ने इसलिए किया है कि यह दोनों मदकारी हैं और भी जितने गाञ्झा, अफीम, चरस आदि नशा करने वाली वस्तुयें हैं उन सब का सेवन वर्जित समझना चाहिए। क्योंकि 'बुद्धि लुम्पति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते'।

(शार्ङ्गधर अ० ४-श्लो० २१)

जो द्रव्य बुद्धि का नाश करनेवाला है अर्थात् जितनी भी वस्तुयें नशा पैदा करती हैं वे सब बुद्धिलोपक होने से अभक्ष्य हैं।

शराब

गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा।
यथैवेका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः॥

(मनु० ११।९४)

शराब तीन प्रकार की होती है। प्रथम जो गुड़ के द्वारा बनाई जाय वह गौडी, दूसरे जो आटे से बनाई जाये वह पैष्टी, तीसरे जो मधुक वृक्षों के फूलों से बनाई जाये वह माधवी कहलाती है। जैसी एक वैसी ही सारी हैं अतः तीनों प्रकार की शराब वर्जित हैं।

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत्॥

(मनु० ११।९३)

शराब अन्नों का मल है और मल, पाप कहलाता है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य (शूद्र भी) सुरापान न करे।

मांस

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित् ।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥
(मनु० ५।४८)

प्राणियों की हिंसा किए बिना मांस की उपलब्धि नहीं होती। प्राणियों का मारना सुखदायक नहीं । अतः माँस खाना सर्वथा निषिद्ध है । मांसभक्षी लोग 'अहिंसा परमो धर्मः' का उल्लङ्घन कर महापापी बनते हैं ।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया ।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते ॥
(मनु० ५।४५)

जो अहिंसक प्राणी अर्थात् गाय, मुर्गी, बकरी, बकरा, मछली आदि को अपने सुख के लिए मारता है वह इस लोक में तो क्या परलोक में भी सुख को प्राप्त नहीं होगा ।

आजकल लोग मछली और अण्डे के खाने को मांस भक्षण में नहीं गिनते । किन्तु-

मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान् विवर्जयेत् । (मनु० ५।१५)

मछली को खानेवाले 'सर्वमांसादः' अर्थात् सभी का मांस खानेवाले कहलाते हैं । इसका अभिप्राय यह है कि जिसने मछली का मांस खा लिया, उसने सबका मांस खा लिया अतः मछली का मांस खाना नितान्त निषिद्ध है ।

माँस, मदिरा आदि के अतिरिक्त—

लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं कवकानि च ।
अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥ (मनु० ५।५)

द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को लशुन,

शलगम, प्याज, कवक (साँप की छत्री) और मलिन, विष्ठा, मूत्र आदि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक, फल, मूल आदि नहीं खाने चाहियें।

लोहितान् वृक्षनिर्यासान् व्रश्चनप्रभवांस्तथा।
शेलुं गव्यञ्च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥(मनु० ५।६)

वृक्षों के लाल व श्वेत सभी प्रकार के गोन्द, शेलु-निसोड़ा और गौ का खीस भी वर्जित है।

ब्रह्मचारियों के लिए अभक्ष्य पदार्थ

पिता ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य का उपदेश करता है कि—

मांसरूक्षाहारमद्यादिपानं च वर्जय॥१५॥

(संस्कारविधि-वेदारम्भ प्रकरण)

हे ब्रह्मचारिन् तू मांस, रूखा भोजन और शराब आदि का सेवन मत कर। और—

अत्यम्लातितिक्तकषायक्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व॥१६॥

(संस्कारविधि-वेदारम्भ प्रकरण)

अति खट्टा अमली आदि, अति तीखा लालमिर्च आदि, कसेला हरड़े आदि, क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमालगोटा आदि द्रव्यों का सेवन मत कर। अतः ब्रह्मचारियों को चाहिए कि उपर्युक्त सब पदार्थों को त्याग कर जीवन को उदात्त बनावें।

ब्रह्मचारी को लाल मिर्च, सफेद, काली, हरी कोई भी मिर्च खानी तो क्या खाने के लिए छूनी भी नहीं चाहिए।

'घृतौदनं तेजस्कामः' अर्थात् जो तेजस्वी बलवान् होना चाहे उसे घृत चावल आदि सात्विक पदार्थों का सेवन करना चाहिए। ऋषि दयानन्द जी ने इस विषय में लिखा है—

मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना-पिलाना भी चाहिए। (सत्यार्थ० तृतीय समुल्लास)

और—"जिस प्रकार आरोग्य विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार से भोजन छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें।" (सत्यार्थ० द्वितीय समुल्लास)

अचार, मुरब्बे, चटनी, मसाले, खट्टे, चटपटे मसाले युक्त भोजन ब्रह्मचारी को भूलकर भी नहीं करने चाहिएं। वैसे ये गृहस्थों के लिए भी हानिकारक हैं।

सभी मनुष्यों को चाहिए कि बल, बुद्धि, पराक्रमवर्धक त्रिदोषनाशक, ब्रह्मचर्य के लिए हितकारक सात्त्विक द्रव्यों को ही अपने भोजन में स्थान दें और जितने भी पदार्थ मांस मदिरादि बुद्धिनाशक एवं देश के लिए भी अहितकारक हैं उनको सर्वदा के लिए छोड़ दें। क्योंकि—

अभोज्यमन्नं नात्तव्यमात्मनः शुद्धिमिच्छता।
अज्ञानभुक्तं तूत्तार्यं शोध्यं वाप्याशुशोधनैः॥

(मनु० ११।१६०)

जो अपने आपको पवित्र रखना चाहता है उसे चाहिए कि वह अभक्ष्य पदार्थों का सेवन कभी न करे। यदि कोई अज्ञानवश अभक्ष्य पदार्थ खाया भी जावे तो ज्ञान होने पर वमन आदि के द्वारा निकाल देवे। वा कोई आत्मा की पवित्रता के लिए प्रायश्चित्त अवश्य करे।

विरुद्ध भोजन

बहुत से भोज्य पदार्थ ऐसे हैं कि जो पृथक्-पृथक् खाने से तो लाभ करते हैं, परन्तु यदि उनको मिलाकर अथवा एक के पश्चात्

दूसरा पदार्थ खाने से लाभ के स्थान पर हानि करते हैं। ऐसे पदार्थ नीचे लिखे जाते हैं।

१. दही को गरम रोटी अथवा किसी भी गरम पदार्थ के साथ न खाना चाहिए। पानी मिला दूध और घी खना हानिकारक है। छाछ, दही अथवा बेलगिरी में से किसी के साथ केला खाना हानिकारक है। बराबर-बराबर घी तथा मधु या जल और मधु मिलाकर खाना मानो विष को खाना है। कांसी, ताम्बा या पीतल के पात्र में कई दिन का रखा हुआ घी, तेल या कुछ समय का रखा हुआ दूध, मक्खन, खटाई, दही अथवा छाछ और दूध के साथ सिरका, अंजीर, काँजी, नमक, इमली, अखरोट, निम्बू अथवा जामन खाना हानिकारक है, किसी भी उष्ण पदार्थ के साथ शीतल शर्बत ककड़ी तरबूज अथवा खीरा नहीं खाना चाहिये। कांजी या सिरका के साथ तिल हानिकारक है। तेल और बेसन अर्थात् तेल के पकौड़े नहीं खाने चाहियें। भूख को बन्द करते हैं, मेदा को खराब करते हैं। तेल की बनी हुई और घी की बनी हुई चीजें साथ-साथ खाना हानिकारक है। गन्ना और मसूर की दाल साथ-साथ नहीं खानी चाहिये। मूली या खरबूजे के साथ मधु, दूध में गुड़, खरबूजा एक साथ नहीं खाना चाहिए। घी चिकनी मिठाई खटाई खीरा फूट, ककड़ी, तरबूज, खरबूज तथा नाशपाती के ऊपर पानी, शरबत या दूध की लस्सी पीना बहुत हानिकारक है।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भोजन

सत्त्व रज और तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है और सभी प्राकृतिक पदार्थों को इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। भोजन भी सात्त्विक राजसिक और तामसिक भेद से तीन प्रकार का है। मनुष्यों की प्रवृत्तियाँ अपनी-अपनी रुचि और स्वभाव

के कारण विभिन्न हैं। जिसकी जैसी प्रवृत्ति होती है वह उसी प्रकार के भोजन को पसन्द करता है। श्रीकृष्ण जी गीता में लिखते हैं—"आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः" अर्थात् सभी मनुष्य अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार तीन प्रकार के भोजन को श्रेष्ठ समझते हैं, सात्त्विकवृत्ति के लोग सात्त्विक भोजन को श्रेष्ठ समझते हैं, राजसवृत्ति के लोग राजसिक भोजन को उत्तम मानते हैं, इसी प्रकार तमःप्रधान व्यक्ति तामस भोजन में रुचि रखते हैं।

सात्त्विक भोजन

आयुःसत्त्वबलारोग्य-सुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

(गीता १७।८)

आयु, बल, आरोग्य सुख और प्रीति को बढ़ानेवाले तथा रसीले, चिकने, स्थिर (देर तक ठहरनेवाले) एवं हृदय के लिए हितकारी भोजन सत्त्वगुणी मनुष्यों को प्रिय होता है। अर्थात् जिस भोजन के सेवन से आयु, बल वीर्य आरोग्य आदि की वृद्धि हो, जो सरस चिकना (घृतादियुक्त), चिरस्थायी और हृदय के लिए हितकारी हो वह भोजन सात्त्विक है।

सात्त्विक-पदार्थ

गाय का घी, दूध, गेहूं, जौ, चावल, मूंग, मोठ, उत्तम फल, पत्तों के शाक, काली तोरई, घीया (कद्दू) आदि मधुर, शीतल, स्निग्ध, सरस शुद्ध पवित्र और शीघ्र पचनेवाले तथा ओज एवं कान्तिप्रद पदार्थ हैं वे सात्त्विक हैं।

राजसिक भोजन

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥
(गीता १७।९)

कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, दाह–जलन पैदा करनेवाले तथा दुःख, शोक और रोगों को बढ़ानेवाले भोजन रजोगुणी व्यक्तियों को प्रिय होते हैं।

कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्युष्ण, तीखे, रूखे और दाहकारक–नमक, मिर्च, इमली मसाले आदि से युक्त भोजन राजसिक हैं और इसके सेवन से मनुष्य की वृत्ति चंचल हो जाती है, नाना रोगों से ग्रस्त होकर व्यक्ति विविध दुःखों का उपभोग करता है और शोक सागर में डूब जाता है।

राजसिक पदार्थ

नमक, मिर्च, मसाला, हींग, गाजर, चणा, उड़द, करेला, सरसों, तैल में पके हुए पदार्थ, मांस, मछली, कछुआ, अण्डा, शराब, चरस, चण्डू, काफी, कोकीन आदि मादक-द्रव्य तथा उष्ण रूक्ष, गुष्ठ, भारी देर में पचनेवाले सभी पदार्थ राजसिक हैं।

तामसिक भोजन

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥
(गीता १७।१०)

बहुत देर के बने हुए, नीरस=शुष्क, दुर्गन्धयुक्त, बासी, उच्छिष्ट=झूठे और बुद्धि को नष्ट करनेवाले भोजन तमःप्रधान व्यक्ति को प्रिय होते हैं।

जो अन्न गला सड़ा, बहुत विलम्ब से पकाया हुआ दुर्गन्धित उच्छिष्ट और कृमि कीटों से अपवित्र किया हुआ तथा रसहीन हो वह तामसिक है। इस प्रकार के भोजन के सेवन से सब प्रकार के रोग हो जाते हैं, स्वास्थ्य और आयु क्षीण हो जाते हैं, बुद्धि, मन तथा आत्मा इतने मलिन हो जाते हैं, कि उनको अपने हिताहित और धर्म कर्म का भी ध्यान नहीं रहता। अत एव तमोगुणी व्यक्ति मलिन, आलसी प्रमादी और अकर्मण्य होकर पड़े रहते हैं। तामसिक भोजन किसी भी व्यक्ति के लिये उपयुक्त नहीं, सर्वथा सर्वदा त्याज्य है।

तामसिक-पदार्थ

गले सड़े दूषित बासी अन्न फल आदि, भैंस का दूध और घी, भिण्डी, काशीफल, लहसुन, प्याज, शलगम आदि कफवर्द्धक, बुद्धि को भ्रष्ट करनेवाले दुर्गन्धयुक्त और भारी पदार्थ हैं वे सब तामसिक हैं।

भोजनसम्बन्धी आवश्यक नियम

१. जिस प्रकार भौतिक अग्नि ईंधन के बिना बुझ जाती है इसी प्रकार भूख लगने पर भोजन न करने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, रक्तादि धातुओं का शोषण तथा शरीर कृश हो जाता है।

२. भोजन निश्चित समय पर करना चाहिये, असमय में भोजन करने से नाना व्याधियां और मृत्यु तक हो जाती है।

३. भोजन समय के व्यतीत हो जाने पर खाली पेट में वायु जठराग्नि को मन्द कर देती है, तत्पश्चात् किया भोजन कठिनता से पचता है।

४. भोजन के गुण दोषों को ध्यान में रखते हुए दिन में केवल दो ही बार भोजन करना चाहिए।

५. अधिक उष्ण या बहुत देर से बना बासी भोजन नहीं खाना चाहिए।

६. सायंकाल का भोजन सोने से दो तीन घण्टे पूर्व अवश्य ही कर लेना चाहिए। दोपहर से सायंकाल की भोजन की मात्रा आधी होनी चाहिए।

७. कम भोजन से सन्तुष्टि नहीं होती, बल और शरीर क्षीण हो जाते हैं। इसी प्रकार अधिक भोजन से भी आलस्य, प्रमाद, अफारा, भारीपन आदि हो जाते हैं अतः दोनों ही त्याज्य हैं।

८. मित भोजन ही स्वास्थ्य का मूलमन्त्र है।

९. अजीर्ण हो जाने पर पथ्य हो या अपथ्य कुछ भी नहीं खाना चाहिये, क्योंकि अजीर्ण में भोजन करना दुःखदायक है।

१०. अकेला स्वादु भोजन का सेवन न करे, अपने आश्रित सेवक सम्बन्धियों को उसमें सम्मिलित करना चाहिए।

११. परस्पर विरुद्ध भोजन एक साथ खाने से लाभ के स्थान में हानि अधिक होती है।

१२. भोजन के कम से कम एक घण्टा पूर्व और एक घण्टा पश्चात् पानी पीना चाहिए।

१३. भोजन में जल नहीं पीना चाहिए, यदि भोजन रूक्ष हो तो थोड़ी मात्रा में पीना उचित है।

१४. व्यायाम के तत्काल पश्चात् भोजन करना अथवा भोजन के पश्चात् तत्काल व्यायाम करना बहुत हानिकारक है।

१५. भोजन में शुद्धता की अत्यधिक आवश्यकता है।

१६. भोजनोपरान्त मुख को कुल्लादि से शुद्ध कर लेना चाहिये और दांतों में फंसे अन्नकणों को तिनके आदि से युक्तिपूर्वक पृथक्

कम देना चाहिये।

१७. ब्रह्मचारी का सायंकाल का भोजन अत्यन्त हल्का होना चाहिये, यदि हो सके तो केवल दुग्धाहार ही करे।

१८. भोजन खूब भूख लगने पर करना चाहिये, स्वाद भोजन में नहीं, भूख में है।

१६. जिन पदार्थों में से स्नेहभाग निकाल लिया गया है, उनका सेवन नहीं करना चाहिये।

२०. एक वस्त्र धारण कर भोजन नहीं करना चाहिये।

२१. शैय्या पर बैठकर, लेटकर, आसन पर रखकर या हाथ में लेकर भोजन करना शिष्टाचार के विरुद्ध है।

२२. किसी के भी साथ एकपात्र में भोजन नहीं करना चाहिए। कुल्ला किये बिना झूठे हाथ इधर उधर नहीं घूमना चाहिये।

२३. गीले पाँव करके भोजन करना चाहिये, ऐसा करने से आयु बढ़ती है।

२४. सुश्रुत के मतानुसार भोजन के पश्चात् शतपद घूमकर बाँई करवट लेट जाना चाहिए। भावमिश्र के मतानुसार ८ श्वास सीधे, १६ दाहिनी करवट और ३२ श्वास बाईं करवट लेटकर लेने चाहियें।

२५. सर्वदा एक ही प्रकार के पदार्थ नहीं खाने चाहियें, बदल-बदल कर भोजन करना स्वास्थ्यप्रद है।

२६. भूख में पानी पीने से जलोदर हो जाता है और प्यास में भोजन करने से गुल्मरोग हो जाता है, अतः प्यास में पानी तथा भूख में भोजन करना उचित है।

२७. भोजन के पूर्व जल पीने से जठराग्नि मन्द होती है और भोजन के पश्चात् जल पीने से कफ बढ़ जाता है और भोजन के

बीच में अधिक जल पीने से भोजन भलीभांति नहीं पचता।

२८. पेट के दो भाग अन्न से तीसरा भाग जल और चौथा भाग वायु से भरना चाहिये अर्थात् पेट को ठूंस ठूंस कर अन्न से नहीं भरना चाहिये।

२६. भोजन खूब चबा-चबा कर खाना चाहिये, इससे भोजन शीघ्र पचता है तथा शरीर का अङ्ग बन जाता है बिना चबाये जल्दी-जल्दी किया हुआ भोजन रोगों को बढ़ाता है ध्यान रहे दांतों का कार्य आँतों से नहीं लेना चाहिये।

३०. फल तथा सभी शुष्क (जो द्रव न हों) पदार्थों को भोजन करने वाले के दाहिनी ओर तथा दूध जल आदि द्रव पदार्थों को बांई ओर रखना चाहिये।

३१. भोजन करते समय पहले मधुर रस का सेवन करना चाहिये, बीच में खट्टे और लवण रस का तथा अन्त में शेष चरपरे कटु कषैले रसों का सेवन करना उचित है।

३२. यदि भोजन में फल हों तो पहले अनार खाना चाहिये, फिर रोटी, चावल शाकादि और अन्त में दूध या छाछ आदि द्रव पदार्थों का सेवन करना चाहिये क्योंकि शास्त्र में पहले घन (सख्त), बीच में मृदु (नर्म) और अन्त में द्रव पदार्थों के सेवन का विधान है।

भोजन में लवण और क्षार

लवण और क्षार

क्षार के विषय में चरकशास्त्र में लिखा है—"दृष्टिशुक्रघ्नः क्षारः" क्षार दृष्टि अर्थात् आंखों की देखने की शक्ति और वीर्य अर्थात् ब्रह्मचर्य को नष्ट करता है।

चरक में "क्षारः पुंस्त्वोपघातिनाम्" अर्थात् पुरुष की पुंस्त्वशक्ति का नाश करनेवाले पदार्थों में सब से अधिक पुंस्त्वनाशक क्षार है। मनुष्य की ब्रह्मचर्यशक्ति वा वीर्य का सबसे अधिक नाश क्षार करता है।

क्षार क्या वस्तु है, इस विषय में—'क्षरणात्क्षारः" क्षरण करने से क्षार कहाता है यह त्वचा, मांस आदि को उतार देता है, अतः इसे क्षार कहते हैं। चक्रपाणि के मत में नीचे जाने की क्रिया को क्षार कहते हैं। दोषों को अपने स्थान से हिला देना, यह भी क्षरण का अभिप्राय हैं। वैसे क्षार अनेक रसवाले द्रव्यों यव, सज्जी, अपामार्ग, मूली, सुहागा आदि से तैयार किया जाता है। इसमें कटु लवण आदि अनेक रस होते हैं।

क्षार सभी लगभग रूक्ष, उष्ण और तीक्ष्ण होते है। अतः वीर्य को पतला करके नाश करने वाले होते हैं। ब्रह्मचर्यप्रेमी व्यक्ति को इन का सेवन नहीं करना चाहिए। औषध में क्षार का सेवन करना भी पड़ जाए तो किसी चतुर वैद्य की सम्मति से करना चाहिए। जहां क्षार कुछ रोगों को दूर करता है वहां इसमें वीर्य नाश करनेवाला भयङ्कर दोष भी है, अतः ब्रह्मचारी को सदैव इससे बचकर रहना चाहिये। मानवगृह्यसूत्र में "उपनयनप्रभृति व्रतचारी (ब्रह्मचारी) स्यात्" इत्यादि नियम बतलाते हुए लिखा है कि "न मधुमांसे प्राश्नीयात् क्षारलवणे च ॥" (पुरुष १ ख० १ सू० १२) ब्रह्मचारी मद्य मांस और क्षार तथा लवण का सेवन न करे।

गोभिल गृह्यसूत्र में लिखा है—"क्षाररेचनद्रव्याणि मा सेवस्व"। स्वामी दयानन्द जी ने संस्कारविधि में इसका अर्थ इस प्रकार लिखा है—"क्षार अधिक लवण आदि और रेचक जमाल-

क्षोटादि द्रव्यों का सेवन मत कर।" वेदारम्भ संस्कार में ब्रह्मचारी के लिए लिखा है कि तीन दिन तक क्षार लवणरहित पदार्थ का भोजन ब्रह्मचारी किया करे।" अतः ब्रह्मचारी के लिए लवण क्षार का परित्याग उसकी ब्रह्मचर्य साधना में सहायक है।

लवण से हानियां

चरक शास्त्र में लवण के दोष इस प्रकार लिखे हैं–"लवणो रसो गुरुः स्निग्ध उष्णश्च...पित्तं कोपयति, रक्तं तर्षयति, मोहयति, मूर्च्छयति, तापयति, दारयति, कुष्णाति मांसानि, प्रगालयति कुष्ठानि, 'विषं वर्धयति', शोफान् स्फोटयति, पुंस्त्वमुपहन्ति, इन्द्रियाण्युपरुणद्धि, वलीपलितखालित्यमापादयति, अपि च लोहितपित्ताम्लपित्तविसर्पवातरक्तविचर्चिकेन्द्रलुप्तप्रभृतीन् विकारानुपजनयति।

लवण रस भारी स्निग्ध और उष्ण होता है, लवण-रस वा नमक का उपयोग पित्त को कुपित करता है, रक्त में अत्यधिक गति को उत्पन्न करता, प्यास लगाता, मोह को पैदा करता, मूर्च्छा तथा सन्ताप को उत्पन्न करता है। फाड़ता है, माँसों को कुरेद देता है, कुष्ठ को गलाकर गिरा देता है, विष को बढ़ाता है, शोथों को फोड़ देता है, पुंस्त्व को नष्ट करता है, इन्द्रियों को क्षीण करता है, मनुष्य को बुड्ढा कर देता है, शरीर में झुरियां पड़ जाती हैं, बालों को सफेद और गंजा कर देता है। रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, वातरक्त, विचर्चिका, इन्द्रलुप्त आदि रोगों को उत्पन्न करता है। लवण को सुश्रुत में भी खुजली, शोथादि रोगों को उत्पन्न करनेवाला तथा पुंस्त्व और इन्द्रियों की शक्ति का नाशक लिखा है।

जिस प्रकार आजकल नमक का सेवन लोग करते हैं वह तो सर्वथा ही अनुचित है। सब्जियों में ऊपर से नमक डालकर, फलों

के साथ भी नमक, यहां तक कि सेव तरबूज आदि मीठे फलों के साथ भी नमक खाते हैं, नमक मिले हुए दलिये आदि में दूध मिला कर खाते हैं, ऐसे लोगों पर दया आती है। ऐसे लोग ब्रह्मचर्य की तो क्या रक्षा करेंगे? नमक के सेवन से लोग कुष्ठादि भयंकर रोगों में फंस जाते हैं। नमक के कारण अधिक खा जाते हैं, अधिक खाने से अपचन (कब्ज) हो जाता है और कब्ज से वीर्य नाश हो जाता हैं। क्योंकि कब्ज=मलबन्ध ब्रह्मचर्य का परम शत्रु है। भोजन का अपना स्वाद क्या है यह तो नमक खाने वाले जानते ही नहीं, क्योंकि नमक के स्वाद से अन्य स्वाद नष्ट हो जाते हैं। अधिक नमक खानेवाले प्रायः जिह्वालोलुप=चटोरे होते हैं अतः वे पेटू बन जाते हैं। पेटू मनुष्य का ब्रह्मचर्यनाश सर्वनाश हो जाता है। भोजन खाने का जो उद्देश्य स्वास्थ्य, बल वा शक्ति बढ़ाना तथा जीवनरक्षादि है वह नमक खाने से सर्वथा समाप्त हो जाता है अतः बाह्य अप्राकृतिक नमक का परित्याग ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य-प्रेमी के लिए हितकर है।

जितनी आवश्यकता लवणरस की शरीरनिर्माण स्वास्थ्य-रक्षणादि के लिए है उतना नमक शाक भाजी, फल आदि भोज्य पदार्थों में स्वाभाविक रूप से विद्यमान है। अतः शाक भाजी फलादि सेवन अपनी प्रकृति के अनुसार यथोचित मात्रा में प्रतिदिन करना चाहिये, जिससे शरीर की आवश्यकतानुसार लवणरस की पूर्ति हो सके, और बाहर का नमक खाकर ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य का नाश नहीं करना चाहिये। क्योंकि नमक में जो पाचनादि कुछ गुण लिखे हैं वहां इसे ब्रह्मचर्य का शत्रु भी तो लिखा है—'पुँस्त्वमुपहन्ति' ब्रह्मचर्य का नाश करके मनुष्य की पुँस्त्व शक्ति को नष्ट करता है अर्थात् लवण का सेवन मनुष्य को नपुंसक (नामर्द) बनाता है।

लवण-रस से लाभ तथा बाह्य लवरण से हानियां

लवणरस का सेवन हम सभी प्रतिदिन भोजन में करते हैं। डाक्टर लोग इसको शरीर के लिए हितकारी कहते हैं, अतः अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

निम्नलिखित लाभ बतलाते हैं :—

१—नमक से हड्डियों तथा शरीर का निर्माण होता है।

२—पाचनशक्ति में नमक सहायता करता तथा रक्त को शुद्ध करता है।

३—नमक के सेवन से मुख की लालाग्रन्थियां अधिक कार्य करती हैं, लार अधिक मात्रा में उत्पन्न करती हैं।

४—लवण की सहायता से यकृत् पित्त बनाने का कार्य करता है।

५—भोजन को पचाने के लिए जो हमारे आमाशय में पाचक-रस बनता है वह लवण के सहयोग से ही बनता है।

चरक शास्त्र में लवण रस के गुण इस प्रकार लिखे हैं—

"लवणो रसः पाचनः क्लेदनो दीपनश्च्यावनश्छेदनो भेदनः तीक्ष्णः सरो विकास्यधःस्रं स्यवकाशकरो वातहरः स्तम्भसंघातविधमनः सर्वरसप्रत्यनीकभूत आस्यमासावयति कफं विष्यन्दयति···। अर्थात् लवणरस पाचन, गीला करनेवाला, दीपन, स्राव करनेवाला, छेदन, भेदन, रेचक, सन्धिजोड़ों के बन्धनों को खोलनेवाला, कोष्ठों में रुके हुये मलों को बिना पकाये नीचे की ओर ले जानेवाला, वात और कफ को हरनेवाला, स्तम्भ (जकड़ना), बन्ध (कब्ज) दोषों के संघात का नाशक और सम्पूर्ण रसों का शत्रु है अर्थात् यदि नमक या लवण रस किसी भोज्य पदार्थ में अधिक होजाये तो किसी अन्य रस का स्वाद नहीं आता है। मुख ने लाला और कफ

को बहाता है। (मार्गान् विशोधयति) मार्गों को शुद्ध करता तथा शरीर के अवयवों को मृदु नरम करता है (रोचयत्याहारम्) आहार में रुचि करता है। प्रायः लोग इसको स्वाद के कारण ही अधिक खा जाते हैं। ये लवण रस के लाभ बतलाये हैं, जो नमक प्रतिदिन ऊपर से डालकर खाया जाता है उसमें ये गुण व लाभ नहीं हैं।

लवण इस शरीर के लिए अत्यन्त उपयोगी है अतः भगवान् ने लवणरस सबसे अधिक उत्पन्न किया है। प्रायः सभी खाद्य पदार्थों में लवणरस पाया जाता है। फल तथा शाक सब्जियों में स्वाभाविक रूप से लवणरस वा प्राकृत नमक अधिक पाया जाता है। अतः कन्द मूल, फल, शाक भाजी, के खाने को स्वास्थ्य रक्षार्थ अधिक महत्त्व दिया है। जो लोग शाकभाजी नहीं खाते वे प्रायः रोगी देखे जाते हैं। फलों में मिश्रित जो लवण पाया जाता है वह शरीर के लिए बहुत लाभकारी है। इस स्वाभाविक लवण की ही प्रशंसा प्राचीन शास्त्र तथा आधुनिक वैद्य और डाक्टर करते हैं। जो भोजन में ऊपर से बनावटी सांभर, समुद्र आदि का नमक खाते हैं वह हानिकारक है, उसकी आवश्यकता भी नहीं है। वास्तव में हमारी आवश्यकता के अनुसार लवणरस हमें भोज्य पदार्थों से स्वयमेव प्राप्त हो जाता है अतः यह आवश्यक नहीं कि भोजन पकाते समय लवण डाला जाये या खाते समय ऊपर डालकर खाया खाये। लवणरस की प्रशंसा के कारण लोगों में नमक मिलाने की प्रबल प्रथा चली हुई है, यह अनावश्यक और हानिकारक है। स्वाद के कारण लोग नमक सेवन आवश्यकता से अधिक मात्रा में करके हानि उठा रहे हैं। अतः ऊपर से नमक डाल कर अथवा भोजन में पकते समय डालकर खाने की प्रथा को बन्द करना ही हितकर है।

भोज्य पदार्थों में विद्यमान स्वाभाविक लवण रस ही हमारे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त है। तथा यह बात भी भलीभांति समझ लेनी चाहिये कि जहां कहीं लवण का लाभ अथवा उपयोग लिखा है यह सांभर, विड, सौंचर और समुद्र नमक तो कदापि नहीं लेना चाहिये, वहां सैंधा नमक का प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिए आयुर्वेद के ग्रन्थों में लिखा है। यह वैद्यों के लिए संकेत है—"लवणं सैन्धवं प्रोक्तम्" जहां कहीं प्रयोग में लवण लिखा हो तो सैंधा नमक ही लेना चाहिये। चरक शास्त्र में भी "सैन्धवं लवणानां श्रेष्ठतमं पथ्यम्' लवणों में सबसे श्रेष्ठ सैंधा नमक पथ्य माना है। सैंधा नमक खनिज है, अर्थात् खान से निकलता है। इसकी खान पाकिस्तान में रह गई, अब सैंधा नमक के नाम से बाजार में बिकता है। दुर्भाग्य से असली सैंधा नमक तो औषध निर्माण के लिए भी नहीं मिलता, प्रतिदिन खाने के लिए कहां से आये? सांभर नमक का सेवन तो अत्यन्त हानिकारक है। ब्रह्मचर्य रक्षा की दृष्टि से तो सभी नमक बहुत हानिकारक हैं।

लवण पर ब्र० रामप्रसाद जी का अनुभव

नमक के विषय में ब्रह्मचारी रामप्रसाद 'बिस्मिल' जो फांसी के तख्ते पर देश की स्वतन्त्रता के लिए हंसते-हंसते झूल गये, लिखते हैं—

"सहसा ही बुरी आदतों को छोड़ा था इसी कारण कभी-कभी स्वप्नदोष हो जाता था। तब किसी सज्जन के कहने से हमने नमक खाना छोड़ दिया, केवल उबाल कर शाक या दाल से एक समय भोजन करता। मैंने रात्रि के समय भोजन करना त्याग

दिया, केवल थोड़ासा दूध ही रात्रि को पीने लगा। मिर्च खटाई तो छूता भी न था। इस प्रकार पांच वर्ष तक बराबर नमक न खाया। नमक के न खाने से शरीर के सब दोष दूर हो गये। और मेरा स्वास्थ्य दर्शनीय हो गया, सब लोग मेरे स्वास्थ्य को आश्चर्य की दृष्टि से देखा करते।''

लवण पर महात्मा गांधी का अनुभव

महात्मा गांधी जी लवण के विषय में लिखते हैं—

''मसाले के विषय में जो कहा गया है वही नमक के विषय में भी कहा जा सकता है। कितने ही इस बात को सुनकर चौंक पड़ेंगे, किन्तु यह एक अनुभव सिद्ध बात है इङ्गलैंड में एक स्कूल है, जिसका यह मत है कि नमक मसाले से अधिक हानिकारक है, जो शाक हम लोग खाते हैं उसमें आवश्यकता अनुसार नमक का भाग विद्यमान है। अतः ऊपर से नमक मिलाने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता से अधिक नमक हमारे शरीर के पसीने द्वारा या और किसी दूसरे प्रकार से बाहर निकल आता है। प्रकृति ने आवश्यकतानुसार सभी खाद्य पदार्थों में नमक का भाग छोड़ रखा है। एक लेखक का कहना है कि लवण खून को विषैला बना देता है। वह यह भी कहता है कि जो लोग सर्वथा लवण नहीं खाते उनका खून इतना स्वच्छ होता है कि सांप के विष का भी प्रभाव उन पर कुछ नहीं पड़ता। हम नहीं कह सकते कि यह कहां तक सत्य है। किन्तु अपने निजी अनुभव से यह कह सकता हूं कि दमा जैसे बहुत से रोग नमक छोड़ देने से शीघ्र ठीक हो जाते हैं। दूसरी बात यह है कि इसके छोड़ने से किसी की कुछ हानि होती नहीं देखी गई, किन्तु उन्हें कुछ लाभ ही होता है। मैंने स्वयं दो वर्ष से नमक छोड़ दिया है उसका परिणाम मुझे जरा भी नहीं अखरता। बल्कि कुछ अंशों में मुझे लाभ ही हुआ है। अब मुझे पहले के

समान बार-बार जल नहीं पीना पड़ता। यदि कोई मनुष्य नमक छोड़ दे तो कुछ दिन तक उसे अड़चन प्रतीत होगी। किन्तु यदि वह अपने धैर्य को स्थिर रखेगा तो थोड़े ही दिनों में उसे बहुत लाभ हो सकता है।

लवरण पर महात्मा नारायरण स्वामी जी का मत

महात्मा नारायरण स्वामी जी महाराज अपनी 'योगरहस्य' पुस्तक में लिखते हैं "नमक यदि न खाया जाये तो अधिक अच्छा है, अन्यथा थोड़ी मात्रा में खाया जा सकता है" अतः यदि अभ्यासी नमक का सर्वथा परित्याग कर दे तो उनके लिए अधिक हितकर है।

लवरण पर टण्डन जी का अनुभव

राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने हरद्वार में अपने एक भाषरण में कहा था—"कि मानव भोजन में ऊपर से नमक मिलाकर खाना व्यर्थ ही नहीं किन्तु अनर्थकर भी है. उतना नमक मनुष्य को शाकादि में मिल जाता है जितने की उसे आवश्यकता है। ऊपरी नमक हानिकारक है।" टण्डन जी ने तर्कबल से विषय पुष्ट किया और उदाहरण में अपने आपको उपस्थित (पेश) किया। वे दीर्घकाल से नमक नहीं खाते, किन्तु इस प्रयोग से उन पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। टण्डन जी ऊपरी नमक को एक हल्का विष मानते हैं। उन्होंने वैद्यों तथा डाक्टरों से अनुरोध किया कि वे इस विषय पर विचार करें।

लवरण पर मेरा अनुभव

४० वर्ष से भी अधिक समय व्यतीत हो गया, तभी से मैंने नमक खाना छोड़ रखा है। उसके कुछ काल पश्चात् मेरे अन्य कई मित्रों ने भी नमक का परित्याग कर रखा था। उनमें से कुछ

तो कुछ वर्ष पीछे खाने लग गये और कोई कोई ऐसे भी हैं, जिन्होंने छोड़ने के पीछे नमक को खाने के लिए स्पर्श भी नहीं किया। हमारे गुरुकुल (झज्जर) में २२ वर्ष से कोई भी ब्रह्मचारी नमक ऊपर से डालकर या शाक भाजी पकते समय भी डालकर नहीं खाता। जो शाक-भाजी में स्वाभाविक लवण होता है वही हम खाते हैं, सैंधादि कोई भी नमक भोज्य पदार्थ के रूप में सेवन नहीं करते। इसका मुख्य कारण यही है कि मेरा यह निश्चय है कि ब्रह्मचारी को अपने साधना काल में नमक नहीं खाना चाहिये, अतः मैं स्वयं भी नहीं खाता तथा हमारे ब्रह्मचारी भी नहीं खाते।

नमक छोड़ने का प्रभाव स्वास्थ्य पर कैसा पड़ता है यह हमारे विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को देखने से ही पता चलता है। विद्यार्थियों का स्वास्थ्य भारत के सभी शिक्षणालयों से सामन्यतया अच्छा ही हो सकता है खराब तो किसी रूप में है ही नहीं। खुजली तो आज तक किसी को हुई ही नहीं। फार्मी गन्ना चूसने के कारण कभी-कभी एक दो विद्यार्थियों को दाद अवश्य हुए हैं, वे साधारण औषध के सेवन से चले गये। आंख किसी की कभी नहीं दुखती। फोड़े फुन्सी आदि रक्त-सम्बन्धी विकार भी नहीं होते। प्यास सामान्य लोगों की भांति हमें नहीं सताती। हमारे यहाँ जब नया बालक प्रविष्ट होता है तब कुछ दिन तो उसे हमारा बिना नमक का शाक-दाल अच्छा नहीं लगता। किन्तु थोड़े दिन में उसका अभ्यास हो जाता है और भोजन को रुचि करके खाने लगता है तब उसका शरीर तथा स्वास्थ्य उन्नति करने लगते हैं। रक्त अत्यन्त शुद्ध हो जाता है, मुख की लाली शरीर का लाल रंग तथा चर्मरोगों का सर्वथा अभाव इसके अकाट्य प्रमाण हैं। यही नहीं चरक शास्त्र तथा महात्मा गाँधी जी का यह कथन है कि नमक खाने से सर्प आदि विषैले जन्तुओं का विष शीघ्र और अधिक हानि

करता है। जो नमक नहीं खाते उन पर सर्प आदि का विष बहुत न्यून हानि करता है अथवा करता ही नहीं, यह मेरा अनेक वर्षों का प्रत्यक्ष अनुभव है। मुझे तथा मेरे अनेक ब्रह्मचारियों को सर्प ने काटा है किन्तु बहुत ही आश्चर्य की बात है कि प्रत्यक्ष रूप से तो अनेक ब्रह्मचारियों पर नाम-मात्र भी सर्प के काटने का प्रभाव नहीं दिखाई दिया। किसी-किसी पर नाममात्र का प्रभाव हुआ, वह औषध-उपचार से एक-दो दिन में ठीक हो गया। किन्तु जो व्यक्ति नमक का सेवन करते हैं ऐसे भी मेरे कई साथियों को सर्प ने काटा। उनको सर्प के काटने से पर्याप्त हानि तथा कष्ट उठाना पड़ा।

लगभग २० वर्षों से मैं सर्प-विष की चिकित्सा कर रहा हूं। आस पास के ग्रामों से प्रतिवर्ष सर्प के दंशित रोगी आते ही रहते हैं। इस शुष्क प्रान्त में बिना फण के पित्तप्रकृति के (Vapur) सर्प अधिकतर घुरेड़िये चित्तकोड़ियादि हैं जो पर्याप्त विषैले होते हैं। चिकित्सा समय पर तथा यथोचित नहीं होती तो मृत्यु भी हो जाती है। इसी प्रकार के सर्पों ने हमारे ब्रह्मचारियों को काटा था। उन पर तो नाममात्र का प्रभाव हुआ, अथवा सर्वथा प्रभाव भी नहीं हुआ।

जब कोई सर्प का काटा रोगी चिकित्सार्थ गुरुकुल में आता है तब औषधोपचार के साथ उसका नमक मसाला आदि सब छुड़वा देते हैं तथा गोघृतादि सात्त्विक पदार्थों का सेवन विशेषतया करवाते हैं। नमकादि के छुड़वाने से चिकित्सा शीघ्र तथा सरलता से हो जाती है। इसी प्रकार तृषा, दाह, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विसर्प, कुष्ठ, शोथ, गञ्ज, दाद, खुजली, आदि सब चर्मरोग, नेत्ररोग, दन्तरोग, बालों का सफेद होना, नपुंसकता अर्थात् ब्रह्मचर्य का नाश, स्वप्नदोष और धातु-प्रमेह आदि रोगों को नमक

का सेवन जन्म देता और बढ़ाता है। नमक के छोडने से उपर्युक्त रोग कम हो जाते हैं, कई तो सर्वथा चले ही जाते हैं। यह अनुभव मैं अनेक वर्षों से कर रहा हूं। ब्रह्मचर्य के लिए नमक कितना हानिकारक है यह काकोरी के शहीद ब्र० रामप्रसाद जी के लेख को पढ़कर पाठक समझ ही गये हैं।

नपुंसकता को जन्म देने वालों में नमक सबसे बढ़कर है यह चरक शास्त्र के अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो चुका है। क्योंकि रूक्ष और तीक्ष्ण प्रकृति के नमकादि जितने भी पदार्थ हैं ये वीर्यादि धातुओं को पतला करते हैं। इससे स्वप्नदोष, वीर्य का मूत्र में निकलना आदि प्रमेह रोग हो जाते हैं। अतः स्वास्थ्यप्रेमी तथा ब्रह्मचारियों को नमक का सेवन कदापि भूलकर भी नहीं करना चाहिये। यदि दुर्भाग्यवश किसी को औषधादि के रूप में वा किसी अन्य कारण से नमक का प्रयोग करना भी पड़े तो सैन्धा नमक का ही सेवन, वह भी थोड़ी मात्रा में करना चाहिये। चरकशास्त्र के अनुसार "सैन्धवं लवणानाम्" सब नमकों में सैन्धव नमक ही पथ्य है, अर्थात् कम हानिकारक है। किन्तु ब्रह्मचारी को नमक से सर्वथा बचना चाहिये। सैन्धे नमक की जहाँ खाने की आज्ञा है, वह केवल इसलिए कि जो कोई रोगी आदि लवण खाना चाहे अथवा कोई गृहस्थ नमक बिना न रह सके तो वह बहुत थोड़ी मात्रा में सैन्धा नमक का सेवन कर सकता है। इससे कुछ कम हानि होगी क्योंकि 'लवणं सैन्धवं नोष्णम्' चरक में लिखा है। सभी लवण उष्णवीर्य होते हैं केवल सैन्धव लवण उष्णवीर्य नहीं। तीक्ष्णता और रूक्षता का दोष इसमें भी है। अतः नमक सेवन से बचना ही ब्रह्मचारी के लिए कल्याणकारी है।